श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 2

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 5

समस्त कारणों के कारण

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: श्री नारद मुनि ने ब्रह्माजी से पूछा : हे देवताओं में प्रमुख देवता, हे अग्रजन्मा जीव, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपा करके मुझे वह दिव्य ज्ञान बतायें, जो मनुष्य को आत्मा तथा परमात्मा के सत्य तक ले जाने वाला है।

श्लोक 2: हे पिता, आप इस व्यक्त जगत के वास्तविक लक्षणों का वर्णन करें। इसका आधार क्या है?

यह किस तरह उत्पन्न हुआ? यह किस तरह संस्थित है? और यह सब किसके नियन्त्रण में किया जा रहा है?

श्लोक 3: हे पिता, आप यह सब वैज्ञानिक ढंग से जानते हैं, क्योंकि भूतकाल में जो कुछ रचा गया, भविष्य में जो भी रचा जायेगा या वर्तमान में जो कुछ रचा जा रहा है तथा इस ब्रह्माण्ड के भीतर जितनी सारी वस्तुएँ हैं, वे सब आपकी हथेली में आँवले के सदृश हैं।

श्लोक 4: हे पिता, आपके ज्ञान का स्रोत क्या है? आप किसके

संरक्षण में रह रहे हैं? आप किसकी अधीनता में कार्य करते हैं? आपकी वास्तविक स्थिति क्या है? क्या आप अकेले ही सारे जीवों को अपनी निजी शक्ति के द्वारा भौतिक तत्त्वों से उत्पन्न करते हैं?

श्लोक 5: जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले को सरलता से उत्पन्न करती है और अन्यों के द्वारा पराजित हुए बिना अपनी सृजन-शक्ति प्रकट करती है, उसी प्रकार आप अपनी आत्म-निर्भर शक्ति को प्रयुक्त करके

दूसरे से सहायता लिये बिना सृजन करते हैं।

श्लोक 6: हम किसी विशेष वस्तु—श्रेष्ठ, निकृष्ट या समतुल्य, नित्य या क्षणिक—इनके नामों, लक्षणों तथा गुणों से जो भी समझ पाते हैं, वह आपके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से सृजित नहीं होती, क्योंकि आप इतने महान् हैं।

श्लोक 7: फिर भी जब हम आपके द्वारा पूर्ण अनुशासन में रहते हुए सम्पन्न कठिन तपस्याओं के विषय में सोचते हैं, तो हमें आपसे भी

अधिक शक्तिशाली किसी व्यक्ति के अस्तित्व के विषय में आश्चर्य-चकित रह जाना होता है, यद्यपि आप सृष्टि के मामले में इतने शक्तिशाली हैं।

श्लोक 8: हे पिता, आप सब कुछ जाननेवाले हैं और सबों के नियन्ता हैं। अतएव मैंने आपसे जितने सारे प्रश्न किये हैं, उन्हें कृपा करके बताइये, जिससे मैं आपके शिष्य के रूप में उन्हें समझ सकूँ।

श्लोक 9: ब्रह्माजी ने कहा : हे मेरे वत्स नारद, तुमने सबों पर (मुझ सहित) करुणा करके ही ये सारे प्रश्न

पूछे हैं, क्योंकि इनसे मैं भगवान् के पराक्रम को बारीकी से देखने के लिए प्रेरित हुआ हूँ।

श्लोक 10: तुमने मेरे विषय में जो कुछ कहा है, वह असत्य नहीं है, क्योंकि जब तक कोई उन भगवान् के विषय में अवगत नहीं हो लेता, जो मुझसे परे परम सत्य रूप हैं, तब तक वह मेरे सशक्त कार्यकलापों से निश्चित रूप से मोहित होता रहेगा।

श्लोक 11: भगवान् द्वारा अपने निजी तेज (ब्रह्मज्योति) से की गई सृष्टि के बाद मैं उसी तरह सृजन

करता हूँ जिस तरह कि सूर्य द्वारा अग्नि प्रकट होने के बाद चन्द्रमा, आकाश, प्रभावशाली ग्रह तथा टिमटिमाते तारे भी अपनी चमक प्रकट करते हैं।

श्लोक 12: मैं उन भगवान् कृष्ण (वासुदेव) को नमस्कार करता हूँ तथा उनका ध्यान करता हूँ, जिनकी दुर्जय शक्ति उन्हें (अल्पज्ञ मनुष्यों को) इस तरह प्रभावित करती है कि वे मुझे ही परम नियन्ता कहते हैं।

श्लोक 13: भगवान् की भ्रामिका शक्ति (माया) अपनी स्थिति से

लज्जित होने के कारण सामने ठहर नहीं पाती, लेकिन जो लोग इसके द्वारा मोहित होते हैं, वे "यह मैं हूँ" और "यह मेरा है" के विचारों में लीन रहने के कारण व्यर्थ की बातें करते हैं।

श्लोक 14: सृष्टि के पाँच मूल अवयव शाश्वत काल द्वारा उनसे उत्पन्न अन्योन्य क्रिया तथा जीव का स्वभाव—ये सब भगवान् वासुदेव के भिन्नांश हैं और सच बात तो यह है कि उनका कोई अन्य महत्व नहीं है।

श्लोक 15: सारे वैदिक ग्रंथ परमेश्वर से ही बने हैं और उन्हीं के

निमित्त हैं। देवता भी भगवान् के शरीर के अंगों के रूप में उन्हीं की सेवा के लिए हैं। विभिन्न लोक भी भगवान् के निमित्त हैं और विभिन्न यज्ञ उन्हीं को प्रसन्न करने के लिए सम्पन्न किये जाते हैं।

श्लोक 16: सभी प्रकार के ध्यान या योग नारायण की अनुभूति प्राप्त करने के लिए हैं। सारी तपस्याओं का लक्ष्य नारायण को प्राप्त करने के निमित्त है। दिव्य ज्ञान का संवर्धन नारायण की झलक प्राप्त करने के

लिए है और चरम मोक्ष तो नारायण के धाम में प्रवेश करने के लिए ही है।

श्लोक 17: उनके ही द्वारा प्रेरित होकर मैं भगवान् नारायण द्वारा सर्वव्यापी परमात्मा के रूप में उनकी ही दृष्टि के सामने पहले जो सृजित हो चुका है, उसी की फिर खोज करता हूँ और मैं भी केवल उन्हीं के द्वारा सृजित हूँ।

श्लोक 18: परमेश्वर अपने शुद्ध आध्यात्मिक रूप में सारे भौतिक गुणों से परे होते हैं, फिर भी भौतिक जगत की सृष्टि, उसके पालन तथा संहार के

लिए वे अपनी बहिरंगा शक्ति के माध्यम से प्रकृति के गुणों को—सतो, रजो तथा तमो गुणों को—स्वीकार करते हैं।

श्लोक 19: भौतिक प्रकृति के ये तीनों गुण आगे चलकर पदार्थ, ज्ञान तथा क्रियाओं के रूप में प्रकट होकर दिव्य जीव को कार्य-कारण के प्रतिबन्धों के अन्तर्गत डाल देते हैं और ऐसे कार्यों के लिए उसे उत्तरदायी बना देते हैं।

श्लोक 20: हे ब्राह्मण नारद, परम द्रष्टा परब्रह्म प्रकृति के उपर्युक्त

तीनों गुणों के कारण जीवों की इन्द्रियों की अनुभूति से परे हैं। लेकिन वे मुझ समेत सबों के नियन्ता हैं।

श्लोक 21: समस्त शक्तियों के नियन्ता भगवान् अपनी ही शक्ति से नित्य काल, समस्त जीवों के भाग्य तथा उनके विशिष्ट स्वभाव की सृष्टि करते हैं और फिर स्वतन्त्र रूप से उन्हें अपने में विलीन कर लेते हैं।

श्लोक 22: प्रथम पुरुष के अवतार (कारणार्णवशायी विष्णु) के बाद महत्-तत्त्व अथवा भौतिक सृष्टि के तत्त्व अर्थात् भौतिक सृष्टि के

सिद्धान्त घटित होते हैं, तब काल प्रकट होता है और काल- क्रम से तीनों गुण प्रकट होते हैं। प्रकृति का अर्थ है तीन गुणात्मक अभिव्यक्तियाँ, जो कार्यों में रूपान्तरित होती हैं।

श्लोक 23: महत् तत्त्व के विक्षुब्ध होने पर भौतिक क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। सर्वप्रथम सतो तथा रजोगुणों का रूपान्तरण होता है और बाद में तमोगुण के कारण पदार्थ, ज्ञान तथा ज्ञान के विभिन्न कार्यकलाप प्रकट होते हैं।

श्लोक 24: इस प्रकार आत्म-केन्द्रित भौतिकतावादी अहंकार तीनों स्वरूपों में रूपान्तरित होकर सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण बन जाता है। ये तीन स्वरूप हैं : पदार्थ को विकसित करने वाली शक्तियाँ, भौतिक सृष्टियों का ज्ञान तथा ऐसी भौतिकतावादी क्रियाओं का मागदर्शन करनेवाली बुद्धि। हे नारद, तुम इसे समझने के लिए पूर्ण सक्षम हो।

श्लोक 25: मिथ्या अंहकार के अंधकार से पाँच तत्त्वों में से पहला तत्त्व आकाश उत्पन्न होता है। इसका

सूक्ष्म रूप शब्द का गुण है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह द्रष्टा का दृश्य से सम्बन्ध होता है।

श्लोक 26-29: चूँकि आकाश रूपान्तरित होता है, अतएव स्पर्शगुण से युक्त वायु उत्पन्न होती है और पूर्व परम्परा के अनुसार वायु शब्द तथा आयु के मूलभूत तत्त्वों अर्थात् स्पर्श, मानसिक-शक्ति तथा शारीरिक बल से भी पूर्ण होती है। काल तथा प्रकृति के साथ ही जब वायु रूपान्तरित होती है, तो अग्नि उत्पन्न होती है और यह स्पर्श तथा ध्वनि का रूप धारण

करती है। चूँकि अग्नि भी रूपान्तरित होती है, अतएव जल प्रकट होता है, जो रस तथा स्वाद से पूरित होता है। परम्परानुसार यह भी रूप, स्पर्श तथा शब्द से परिपूर्ण होता है। और जब यही जल अपनी नानारूपता समेत पृथ्वी में रूपान्तरित होता है, तब वह सुगन्धिमय प्रतीत होता है और परम्परानुसार यह रस, स्पर्श, शब्द तथा रूप के गुणों से पूरित हो उठता है।

श्लोक 30: सतोगुण से मन उत्पन्न होकर व्यक्त होता है, साथ ही

शारीरिक गतियों के नियन्त्रक दस देवता भी प्रकट होते हैं। ऐसे देवता दिशाओं के नियन्त्रक, वायु के नियन्त्रक, सूर्यदेव, दक्ष प्रजापति के पिता, अश्विनीकुमार, अग्निदेव, स्वर्ग का राजा (इन्द्र), स्वर्ग के पूजनीय अर्चाविग्रह, आदित्यों के प्रमुख तथा प्रजापति ब्रह्माजी कहलाते हैं। सभी इस तरह अस्तित्व में आते हैं।

श्लोक 31: रजोगुण में और अधिक विकार आने से बुद्धि तथा प्राण के साथ ही श्रवण, त्वचा, नाक, आँख, जीभ, मुँह, हाथ, जननेन्द्रिय,

पाँव तथा मल विसर्जन की इन्द्रियाँ सभी उत्पन्न होती हैं।

श्लोक 32: हे योगियों में श्रेष्ठ नारद, जब तक ये सृजित अंग यथा तत्त्व, इन्द्रियाँ, मन तथा प्रकृति के गुण जुड़ नही जाते, तब तक शरीर स्वरूप धारण नहीं कर सकता।

श्लोक 33: जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति के बल से ये सब एकत्र हो गये तो सृष्टि से मूल तथा गौण कारणों को स्वीकार करते हुए यह ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया।

श्लोक 34: इस प्रकार सारे ब्रह्माण्ड हजारों युगों तक जल के भीतर (कारण-जल में) पड़े रहे। समस्त जीवों के स्वामी ने उन सबमें प्रवेश करके उन्हें पूरी तरह सजीव बनाया।

श्लोक 35: यद्यपि भगवान् (महाविष्णु) कारणार्णव में शयन करते रहते हैं, किन्तु वे उससे बाहर निकल कर और अपने को हिरण्यगर्भ के रूप में विभाजित करके प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हो गये और उन्होंने हजारों-

हजारों पाँव, भुजा, मुँह, सिर वाला विराट रूप धारण कर लिया।

श्लोक 36: बड़े-बड़े दार्शनिक कल्पना करते हैं कि ब्रह्माण्ड में सारे लोक भगवान् के विराट शरीर के विभिन्न ऊपरी तथा निचले अंगों के प्रदर्शन हैं।

श्लोक 37: ब्राह्मण वर्ग भगवान् के मुख का, क्षत्रिय उनकी भुजाओं का और वैश्य उनकी जाँघों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि शूद्र वर्ग उनके पाँवों से उत्पन्न हुआ है।

श्लोक 38: पृथ्वी-तल तक सारे अधोलोक उनके पाँवों में स्थित हैं। भुवर्लोक इत्यादि मध्य लोक उनकी नाभि में स्थित हैं और इनसे भी उच्चतर लोक, जो देवताओं तथा सुसंस्कृत ऋषियों-मुनियों द्वारा निवसित हैं, वे भगवान् के वक्षस्थल में स्थित हैं।

श्लोक 39: भगवान् के विराट रूप के वक्षस्थल से गर्दन तक के प्रदेश में जनलोक तथा तपोलोक स्थित हैं जबकि सर्वोच्च लोक, सत्यलोक, इस विराट रूप के सिर पर

स्थित है। किन्तु आध्यात्मिक लोक शाश्वत हैं।

श्लोक 40-41: हे पुत्र नारद, तुम मुझसे जान लो कि चौदह लोकों में से सात अधोलोक हैं। इनमें पहला लोक अतल है, जो कटि में स्थित है, दूसरा लोक वितल जाँघों में स्थित है, तीसरा लोक सुतल घुटनों में, चौथा लोक तलातल पिंडलियों में, पाचवाँ लोक महातल टखनों में, छठा लोक रसातल है, जो पाँवों के ऊपरी भाग में स्थित है तथा सातवाँ लोक पाताल लोक है, जो तलवों में स्थित है। इस

प्रकार भगवान् का विराट रूप समस्त लोकों से पूर्ण है।

श्लोक 42: अन्य लोग सम्पूर्ण लोकों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। इनके नाम हैं—परम पुरुष के पाँवों पर अधोलोक (पृथ्वी तक), नाभि पर मध्यलोक तथा वक्षस्थल से सिर तक ऊर्ध्व लोक (स्वर्गतक)।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव